फरवरी १९९२ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा, सुद्दा चण्डाल पुक्कुसा।
यम्हा धम्मं विजानेय्य, सोहि तस्स नरूत्तमो॥

– जातक १३-४७४-८.

चाहे क्षत्रिय हो या ब्राह्मण, वैश्य हो या शूद्र, चण्डाल हो या पुक्कुस; जिस किसी से धर्म जाना जा सके, मुमुक्षु के लिए वही उत्तम पुरुष है।

ऐसे थे गुरुदेव

मैं जा रहा हूं, धर्म जा रहा है ।

मेरे वृद्ध माता पिता १९६५ में बर्मा छोड़कर भारत चले गए और वहीं बस गए। उनके दो पुत्र सपरिवार वहीं बसे हुए थे। १९६८ के आसपास माता को एक स्नायु-दौर्बल्य का रोग लग गया जो बढ़ता ही गया। मैं जानता था कि वह विपश्यना करेगी तो इस रोग की पीड़ा से मुक्त हो जाएगी। परंतु भारत में तो कोई विपश्यना का नाम ही नहीं जानता था। उसे कौन सिखाएगा? मैंने बर्मी सरकार के सम्बन्धित विभाग को आवेदन पत्र चढ़ाया कि बर्मी नागरिक होते हुए भी मुझे भारत जाने की अनुमति दे ताकि मैं अपनी रुग्ण मां की सेवा कर सकूं। ऐसे किसी कारण को लेकर वहां किसी को कभी पासपोर्ट नहीं मिला था। सरकार ने जब मुझे पासपोर्ट दे दिया तो बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ और मैने संबंधित अधिकारियों का बड़ा उपकार माना।

जब गुरुदेव को यह खबर मिली कि मुझे भारत जाने की सरकारी अनुमति मिल गई है तो वे भी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने इसे बहुत शुभ माना। वह देखते थे कि मैं अपनी मां की सेवा में विपश्यना शिविर लगाऊंगा तो उसके साथ परिवार के कुछ अन्य लोग व बाहर के लोग भी सम्मिलित होंगे ही और बस इसीसे भारत में पुनः धर्मचक्र का प्रवर्तन शुरू हो जाएगा। उन्होंने मुझे इस पुनीत कार्य के लिए पूरा-पूरा प्रोत्साहन दिया और मार्गदर्शन भी।

जैसे-जैसे मेरे भारत प्रस्थान का दिवस समीप आ रहा था, उनकी प्रसन्नता बढ़ती जा रही थी। अब उनके अंतर की धर्म-कामना पूर्ण होगी। बर्मा का ऋण चुकेगा। भारत को अनमोल रत्न मिलेगा। उन्होंने मुझे अत्यंत करुण चित्त से विधिवत् विपश्यना के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया और प्रभूत मंगल मैत्री से मेरा धर्म अभिषेक किया।

भारत में स्वतंत्र रूप से विपश्यना सिखा सकने की मेरी झिझक देखी तो बहुत आश्वासनभरे शब्दों में कहा, –

"भारत तुम नहीं जा रहे हो, समझो मैं ही जा रहा हूं, सद्धर्म जा रहा है। भारत का बर्मा पर जो ऋण है वह हमें चुकाना है।"

उनके इन आश्वासन भरे शब्दों का संबल प्राप्त कर मैं भारत की धर्म-यात्रा पर निकला। गुरुजी ने कहा था धर्म की सारी शक्तियां तुम्हारा साथ देंगी। सारी प्रकृति तुम्हें सहयोग देगी। भारत की धरती तुम्हारे साथ आयी हुई धर्म-तरंगों को पाकर प्रसन्नता से भर उठेगी।

सचमुच यही हुआ। २२ जून, १९६९ को पूर्वान्ह के समय U.B.A का हवाई जहाज दमदम के हवाई अड्डे पर उतरा और मैं भारत की पावन बुद्ध-धरती को मन ही मन नमन करता हुआ जैसे ही विमान से उतरा कि एक हलका सा भूकंप आया। दूसरे दिन के समाचार पत्र में पढ़ा कि उत्तर भारत की धरती पर, समस्त मज्झिम देश में, धीमा सा भूकंप आया था। अपनी खोई हुई अनमोल संपदा को लौटते देख कर अनेक बुद्धों और बोधिसत्त्वों की यह पावन धरती मानो पुलक रोमांच से भरकर आह्लादित हो उठी।

और सचमुच सारी प्रकृति ने अपूर्व सहयोग दिया मुझे। विघ्न-बाधाओं भरी प्रारंभिक कठिनाइयों के बावजूद अगले महीने ही भारत में विपश्यना का पहला शिविर लगा, जिसमें माता पिता के साथ कुछ परिचित, कुछ अपरिचित कुल मिलाकर १४ साधक-साधिकाओंने भाग लिया और इसके बाद भारत में सहज भाव से धर्मचक्र चलने लगा।

गुरुदेव को जैसे-जैसे इन शिविरों की सफलता की सूचना पहुँचती, उनका मानस प्रसन्नता से भर-भर उठता; यह देखकर कि चिरकाल से सँजोया हुआ उनका स्वप्न अब साकार हो रहा है।

सचमुच रत्न ही तो लाया !

समस्त व्यापार उद्योग और नौकरियों के राष्ट्रीयकरण कर लिए जाने के कारण बरमा के अनेक भारतीय आजीविका-विहीन हो गए थे। अतः बड़ी संख्या में स्वदेश लौटने लगे थे। बर्मा छोड़ते हुए वह अपने साथ कोई आभूषण या अन्य मूल्यवान वस्तुएं नहीं ले जा सकते थे। अपनी जीवनभर की कमाई में से जो कुछ बचा पाए थे उसे यूं छोड़कर जाना अनेकों के लिए कठिन था। अतः आसक्तिवश वे इसे अवैध तरीके से ले जाना चाहते थे। बरमा लालमणि आदि रत्नों का घर था। अतः एक तरीका लोग यह अपनाते थे कि ऐसे कीमती रत्न छिपाकर साथ ले जाते थे। बर्मी सरकार के अधिकारी उसे रोकने के लिए बहुत सतर्क रहते थे। हवाई अड्डे पर कस्टम के अधिकारी खूब कड़ी चेकिंग करते थे। जिस दिन मैं बरमा छोड़ रहा था, हवाई अड्डे पर पहुँचकर इमिग्रेशन की औपचारिकता पूरी करके कस्टम के काउंटर पर गया तो एक परिचित अफसर दिखाई दिया। उसने मुस्कराकर पूछा –

"गोइन्का, तुम भी जा रहे हो?"

"हां भाई, जा तो रहा हूं!" मैंने भी मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

"कोई कीमती चीज तो साथ नहीं ले जा रहे?" उसने पूछा,

"हां भाई, ले जा रहा हूं, एक कीमती रत्न ले जा रहा हूं!" मैंने मुस्कराकर उत्तर दिया।

कस्टम का अफसर घबराया। परिचित होते हुए भी उसे अपने दायित्त्व का बोध था। वह बहुत सजग होकर मेरा सामान खोल-खोलकर देखने लगा। आखिर सामान था ही कितना। एक छोटे से बक्से में चंद पहनने के कपड़े और कुछ पुस्तकें। उसे कुछ नहीं मिल रहा था और उसकी परेशानी बढ़ रही थी। मैं मुस्कराकर देख रहा था।

आखिर उसकी परेशानी दूर करते हुए मैंने कहा, "भाई मेरे, मैं जो रत्न यहां से ले जा रहा हूं, वह अपने देश पर भारत का पुराना कर्ज है, उसे उतारने के काम आएगा। यह रत्न मूलतः भारत से ही आया था। आज इसकी वहां बहुत आवश्यकता है। इसे यहां से ले जाने पर बर्मा विपन्न नहीं होगा। मैं जो ले जा रहा हूं, वह धर्म का रत्न है।"

चुंगी का अधिकारी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। वह जानता था कि मैं सयाजी का विपश्यी शिष्य हूं। हँसते हुए बोला –

"यह रत्न तो तुम अवश्य ले जाओ! मुझे प्रसन्नता है कि तुम इससे हमारे देश का पुराना कर्ज चुका सकोगे।"

और यही तो किया मैंने। भारत का यह धर्म-रत्न भारत को लौटाने आया, जो कि गुरुदेव की तीव्र धर्म-कामना थी।

बाद में मेरे मित्रों से सूचना मिली कि वह चुंगी का अधिकारी जब-जब धर्म बांटने के कार्य में मिलनेवाली सफलता के समाचार सुनता तो बड़ा प्रसन्न होता।

मंगल मित्र,
स. ना. गो.

टिप्पणी :-

शरीर और चित्त के अनित्य क्षेत्र की अनुभूतियां अनेक प्रकार की हो सकती हैं। बहुधा इनका संबंध साधक के पूर्व संचित कर्म-ग्रंथियों से होता है, जो कि सभी साधकों की एक जैसी नहीं होती। अतः अनुभूतियां चाहे जैसी हों, उनका इतना महत्त्व नहीं है। महत्त्व इस बात का है कि साधक उनके अनित्य स्वभाव को समझते हुए राग-द्वेष की प्रतिक्रिया नहीं करे और समता बनाए रखे तो कर्म निर्जरा होती ही है। आगे चलकर इस अनित्य क्षेत्र में अत्यंत सूक्ष्म आनंदप्रद संवेदना की अनुभूति होने लगती है। अक्सर वहीं साधक धोखा खा जाता है और उसे नित्य, शास्वत, ध्रुव मानकर किसी बीच के पड़ाव में अटक कर रह जाता है। अनित्य को अनित्य ही समझता रहता है और उसके प्रति निसंगभाव रखता चलता है तो देर-सबेर शरीर और चित्त के इस क्षणिक स्वभावी अनित्य क्षेत्र के परे की सच्चाई का साक्षात्कार कर लेता है। यह उस परम सत्य की अवस्था है जो वस्तुतः नित्य शास्वत ध्रुव है। न इसमें उत्पाद है, न व्यया सचमुच सम्पूर्ण नीरव शांति और प्रश्रब्धि है। परन्तु एक बात और ध्यान रखने की है कि जो वास्तविक नित्य शास्वत ध्रुव कूटस्थ निर्वाणिक अमर अवस्था है, वह इंद्रियातीत है। अतः जब उस अवस्था का साक्षात्कार हो तो उस समय छहों इंद्रियां सर्वथा निरुद्ध हो जाती हैं। यदि कोई भी इंद्रिय काम कर रही हो तो समझना चाहिए कि परम सत्य का आभास मात्र हुआ है। अभी सही साक्षात्कार नहीं हुआ। क्योंकि कभी-कभी ऐन्द्रिय क्षेत्र में उदय-व्यय इतना सूक्ष्म हो जाता है कि पकड़ में नहीं आता और न होने का भ्रम पैदा कर देता है। अतः ठीक से जांच लेना चाहिए।

स. ना. गो.